नगर परिषद, उदयपुर

बनाम

महेंद्र कुमार

(सिविल अपील संख्या 2546/2004)

27 मार्च 2008

(डॉ. अरिजीत पसायत और लोकेश्वर सिंह पंटा जे.जे)

लाइसेंस शुल्क में वृद्धि- नगर परिषद से संबंधित दुकान- एक समझौते के तहत 11 महीने के लिए दी गई। अवधि समाप्त होने के बाद, कब्जाधारी को अधिक राशि पर परिसर पर काबिज रहने का नोटिस- मालिक को राशि वृद्धि से रोकने के लिए और उसे बेदखल करने से रोकने के लिए कब्जाधारी द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा का दावा- अभिनिर्धारित संपत्ति स्थानीय प्राधिकरण की होने के कारण, उच्च न्यायालय ने राजस्थान नगर पालिका अधिनियम, 1959 के प्रावधानों की अनदेखी करते हुए समझौते को गलत तरीके से एक पट्टा माना। इसके अलावा, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 38, के अनुसार अनुबंध अवधारित होने के बाद, वादी द्वारा प्रस्तुत विनिर्दिष्ट पालन का वाद पोषणीय नहीं है। न्यायहित में निर्णय के अनुसार किराया वृद्धि की गई। राजस्थान नगर पालिका अधिनियम, 1959 विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 धारा 38 विलेख और दस्तावेज की व्याख्या।

अपीलकर्ता- नगरपरिषद ने एक समझौते दिनांकित 08.11.1980 के तहत प्रत्यर्थी को 175/- रुपये के मासिक भुगतान पर 11 महीने के लिए एक दुकान दी। अपीलकर्ता ने जरिये एक नोटिस दिनांकित 06.06.1986 प्रत्यर्थी को 6,000/- रुपये प्रति वर्ष के

भुगतान पर मुकदमा परिसर पर कब्जा करने का प्रस्ताव दिया गया। प्रत्यर्थी ने स्थायी निषेधाज्ञा का एक दावा प्रस्तुत कर अपीलकर्ता को किराया वृद्धि और परिसर खाली कराने से रोकने के लिए निवेदन किया। विचारण न्यायालय ने वाद डिक्री किया। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने राशि में एक बार 10 प्रतिशत की वृद्धि करने की अनुमति दी और उसके पश्चात् यदि कोई वृद्धि होनी थी तो उसके लिये प्रत्यर्थी की सहमति लेनी थी। अभिनिर्धारित कर डिक्री को संशोधित किया।

माननीय उच्च न्यायालय ने दूसरी अपील खारिज कर दी।

नगर परिषद द्वारा दायर अपील में, अपीलकर्ता के पक्ष में यह तर्क दिया गया कि संपत्ति स्थानीय प्राधिकारी की है और राजस्थान किराया और परिसर (किराया और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950 मुकदमा परिसर पर लागू नहीं होता है, उच्च न्यायालय से इस विवाद का दायरा वृद्धि में त्रुटि हुई है कि क्या समझौता एक लाइसेंस या पट्टा था और यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलकर्ता ने एकतरफा किराया बढ़ा दिया।

अपीलों का निस्तारण करते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि:-

1.1 संपत्ति स्थानीय प्राधिकारी की होने के कारण, किराया नियंत्रण अधिनियम लागू नहीं होता है। उच्च न्यायालय ने राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1956 (संक्षेप में 'नगरपालिका अधिनियम') के अंतर्गत बनाये गये नियमों को ध्यान में नहीं रखते हुए समझौते को एक पट्टा माना है जबकि नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना कोई भी पट्टा नहीं बनाया जा सकता है। (पैरा 13-14) [558-एफ, जी]

1.2 यह महत्वपूर्ण है कि किराया तय करने वाली दिनांक 06.06.1986 के नोटिस की वैधता को मुकदमे में चुनौती नहीं दी गई थी। उक्त नोटिस में एक संदर्भ था

और कहा गया था कि यह स्थानीय स्वशासन के आदेश संख्या एफ 5(293) एलबी/77/2183-2730 दिनांक 10.08.1983 पर आधारित था, जिसने एक विशेष तरीके से किराया तय करने की अनुमति दी थी। प्रत्यर्थी का यह तर्क नहीं था कि स्थानीय स्वशासन का आदेश बाध्यकारी नहीं था और/या वह बिना किसी अधिकार के था। (पैरा 9-10) [557-बी, जी]

1.3 यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि मूल समझौते के खंड 8 में भी परिषद को शर्तों के संबंध में समय-समय पर ऐसे आदेश जारी करने की अनुमति दी गई थी। एक बार बढ़ोतरी की शक्ति के बारे में कोई विवाद नहीं है, तो किराए को एक बार 10 प्रतिशत की वृद्धि और उसके बाद दोनों पक्षों की सहमति पर इसकी वृद्धि का प्रश्न स्पष्ट रूप से बिना किसी आधार के है। चूँकि वृद्धि की शक्ति को खंड 8 के आधार पर माना गया है। इसलिए इसे एक बार के अभ्यास तक सीमित करने का प्रश्न स्पष्ट रूप से बिना किसी आधार के है क्योंकि खंड स्वयं ''समय-समय पर'' आदेश जारी करने की अनुमति देता है। (पैरा 16-17) [559-बी, सी, डी, ई]

2. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 38 के दायरे के अनुसार प्रथम अपीलीय न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को राहत देना उचित नहीं था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि वादी केवल उसी समझौते के निष्पादन की मांग कर सकता है जो अस्तित्व में है। संविदा अवधारित होने के बाद वादी द्वारा प्रस्तुत विनिर्दिष्ट पालन का वाद पोषणीय नहीं है। (पैरा 12, 17) [559-ई, एफ; 558-बी-सी]

परसेप्ट डीमार्क (इंडिया) (पी) लिमिटेड बनाम जहीर खान और अन्य 2006 (4) एससीसी 227- पर भरोसा किया गया।

3. विवाद को दूसरे नजरिये से देखा जा सकता है। यह समझौता 11 महीने की अवधि के लिए था। जारी रखने के लिए, एक नया समझौता करना आवश्यक था। यदि

दोनों पक्षों के मध्य कोई समझौता नहीं है, तो एकतरफा कब्जे का प्रश्न ही नहीं उठता। (पैरा 15, 17) [559-ए, डी-ई]

4. सामान्य स्थिति में, किराए का निर्धारण अधिकारियों पर छोड़ देते है, लेकिन विधि के प्रश्न पर निर्णय लेने में लगने वाले लंबे समय को ध्यान में रखते हुए, न्यायहित में परिपूर्णता होगी यदि किराया 01.01.2007 से 1,000/- रुपये और पिछले तीन वर्षों के लिए 700/- रुपये तक बढ़ाया जाए। उपरोक्त शर्तों पर दोनों पक्षों के मध्य विधिवत एक समझौता किया जाएगा। (पैरा 17) [559-एफ, जी]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 2546/2004

राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर के एस.बी. सिविल नियमित द्वितीय अपील संख्या 393/1999 में अंतिम निर्णय आदेश दिनांक 03.08.2000 से।

साथ

सिविल अपील संख्या 2547/2004।

अपीलार्थी की ओर से सुशील कुमार जैन, पुनित जैन, शरद सिंघानिया व क्रिस्टी जैन।

प्रतिवादी की ओर से अरूण के. सिन्हा।

न्यायालय द्वारा निर्णय डॉ. अरिजीत पसायत, जे. द्वारा सुनाया गया।

1. इन अपीलों में राजस्थान उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दो द्वितीय अपीलों में दिए गए फैसले को चुनौती दी गई है। अपीलकर्ता द्वारा अधीनस्थ अदालतों द्वारा दिए गए निष्कर्षों की सत्यता पर प्रश्न उठाते हुए अपील की गई थी।

2. दोनों मामलों की तथ्यात्मक स्थिति जो कि लगभग निर्विवाद है, उसे संक्षेप में नोट करने की आवश्यकता है और वह इस प्रकार है:

3. सुविधा के लिए सिविल अपील संख्या 2546/2004 (नगर परिषद, उदयपुर बनाम महेंद्र कुमार) में तथ्यात्मक स्थिति दर्शाई गई है।

4. प्रत्यर्थी ने वादी के रूप में निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए अपीलकर्ता के विरुद्ध मुकदमा दायर किया:

(अ) वादी के पक्ष में और प्रतिवादी के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री इस आशय की पारित की जाए कि प्रतिवादी वादी से 175/- रुपये (एक सौ पचहत्तर रुपये) प्रति माह की दर से किराया वसूल करे। यह वादी और प्रतिवादी के बीच पट्टेदार और पट्टेदाता का रिश्ता अस्तित्व में आने से पहले तय किया गया था और इसके अलावा एकतरफा किराया नहीं बढ़ाना था, विलंब शुल्क नहीं वसूलना था, किराया बढ़ाकर नहीं वसूलना था और न ही दुकानें खाली करानी थीं। वादी से जबरदस्ती न तो उसे विवादित दुकानों से बेदखल करना, न ही उसके व्यवसाय में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न करना, न स्वयं, न अपने नौकरों, एजेंटों या किसी अधिकारी के माध्यम से ऐसा कार्य करना और न ही उन्हें ऐसा करने देना।

5. दावे के उद्देश्य के लिए प्रत्यर्थी ने एक समझौता दिनांकित 08.11.1980 पर भरोसा किया। यह समझौता इस आशय का निष्पादित किया गया था कि यह लाइसेंस पर आधारित था और 11 महीने की सीमित अवधि के लिए था। अपीलकर्ता के अनुसार अवधि समाप्त होने पर लाइसेंस स्वतः ही समाप्त हो गया। इसके बाद प्रतिवादियों की ओर से कोई समय नहीं बढ़ाया गया। वादी का दावा है कि प्रतिवादी नियमित रूप से किराया स्वीकार कर रहे थे। दिनांक 06.06.1986 के नोटिस द्वारा, जिसे मुकदमे में चुनौती दी गई थी, प्रति वर्ष 6,000/- रुपये के भुगतान पर संपत्ति पर कब्जा करने का

प्रस्ताव दिया गया था। प्रतिवादी का पक्ष यह था कि वह 175/- रुपये के किराए या लाइसेंस शुल्क का भुगतान करके परिसर पर कब्जा करने का हकदार था, जैसा कि दिनांक 08.11.1980 के समझौते में सहमति बनी थी और जो समय के साथ समाप्त हो गया है। विचारण न्यायालय वाद डिक्री किया। हालांकि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपील में एक बार में 10 प्रतिशत की वृद्धि करने की अनुमति दी और उसके पश्चात् यदि कोई वृद्धि होनी थी, तो उसके लिए प्रत्यर्थी की सहमति लेनी थी।

6. उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील खारिज कर दी। इस अपील में उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती दी गई है।

7. अपीलकर्ता-निगम के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, उच्च न्यायालय ने विवाद का दायरा बढ़ाया और यह निर्णित करना चाहा कि समझौता लाइसेंस था या पट्टा। यह कथन किया गया है कि संपत्ति स्थानीय प्राधिकरण की थी और इसलिए, राजस्थान किराया और परिसर (किराया बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950 (संक्षेप में 'किराया नियंत्रण अधिनियम') एकतरफा रूप से वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। यह कथन किया गया कि प्रत्यर्थी को संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 (संक्षेप में 'टीपी अधिनियम) की धारा 106 के अनुसार प्रत्यर्थी को नोटिस देकर मुकदमा परिसर से बेदखल किया जा सकता है') जहां प्रत्यर्थी का पट्टा कायम नहीं था और जहां प्रत्यर्थी का उस संपत्ति पर कब्जा नहीं था या उस संपत्ति पर कब्जा जारी नहीं था। उच्च न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय त्रुटिवश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपीलकर्ता ने फिर से एकतरफा किराया बढ़ा दिया है। नये किराए के निर्धारण के लिए किसी द्विपक्षीय समझौते का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि संपत्ति पर कब्जा करने वाला व्यक्ति कभी भी किराया बढ़ाने के लिए सहमत नहीं होगा और वर्षों पहले तय की गई दर पर किसी भी अवधि के लिए संपत्ति में बना रहेगा। यह निष्कर्ष कि किराये में एक

बार वृद्धि की जा सकती है, बिना किसी कानूनी आधार के है। यह कथन किया गया कि यद्यपि यह मान लिया जाए कि समझौता अस्तित्व में है, खंड 3 और 8 अपीलकर्ता को आदेशों के माध्यम से शर्तों को एकतरफा रूप से बदलने की अनुमति देते हैं, जिनका अनुपालन प्रत्यर्थी को करना होता है और 11 महीने की अवधि के लिए आगे के लिए नवीनीकरण करना होता है।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि प्रत्यर्थी कानून के अनुसार तय की गई दर पर भुगतान करने को तैयार है।

9. सर्वप्रथम यह ध्यान देना होगा कि मुकदमे में नोटिस की वैधता को चुनौती नहीं दी गई थी। नोटिस दिनांक 06.06.1986 में स्थानीय स्वशासन के आदेश संख्या एफ 5(293)एलबी/77/2183-2730 दिनांक 10.08.1983 का संदर्भ था जिसमें एक विशेष तरीके से किराया तय करने की अनुमति दी गई थी। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, किराया निर्धारण का नोटिस राज्य की स्थानीय स्वशासन के उपरोक्त आदेश पर आधारित था।

10. प्रतिवादी का यह पक्ष नहीं था कि स्थानीय स्वशासन का आदेश बाध्यकारी नहीं था और/या वह बिना किसी अधिकार के था। समझौते के खंड 3 और 8 भी प्रासंगिक हैं। वे इस प्रकार पढ़ते हैं:

> ''3. उक्त समझौते को ग्यारह महीने के लिए निष्पादित माना जाएगा और आगे के नवीनीकरण के लिए लाइसेंसधारी को एक महीने पहले एक आवेदन देना होगा, जिस पर परिषद द्वारा विचार किया जाएगा और यदि आवेदन उचित पाया जाता है तब आगे नवीनीकरण किया जाएगा। दुकान जिस स्थिति में ली गई है और उसी स्थिति में सौंपी

जाएगी और उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा और न ही कोई क्षति पहुंचाई जाएगी।''

8. "कि इस दुकान के संबंध में उक्त शर्तों के अलावा परिषद समय-समय पर अन्य आदेश भी जारी करेगी, जिनका अनुपालन भी लाइसेंसधारी को करना होगा।''

11. यह मुकदमा विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (संक्षेप में 'विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम') की धारा 38 के संदर्भ में स्थायी निषेधाज्ञा के लिए था। धारा 38 इस प्रकार है:

''38. शाश्वत न्यदिश कब अनुदत्त किया जाता है (1) इस अध्याय में निहित या संदर्भित अन्य प्रावधानों के अधीन, वादी को उसके पक्ष में मौजूद दायित्व के उल्लंघन को रोकने के लिए, चाहे स्पष्ट रूप से या निहितार्थ द्वारा, एक स्थायी निषेधाज्ञा दी जा सकती है।

(2) जब अनुबंध से ऐसी कोई बाध्यता उत्पन्न होती है, तो न्यायालय अध्याय 2 में निहित नियमों और प्रावधानों द्वारा निर्देशित होगा।

(3) XXX XXX XXX"

12. एक दिलचस्प प्रश्न यह उठता है कि क्या मौजूदा समझौते के अभाव में विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री दी जा सकती है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि वादी केवल उसी समझौते के निष्पादन की मांग कर सकता है जो अस्तित्व में है। जैसा कि इस न्यायालय ने परसेप्ट डी मार्क (इंडिया) (पी) लिमिटेड बनाम जहीर खान और अन्य (2006 (4) एससीसी 227) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया था कि सविंदा

अवधारित होने के बाद वादी द्वारा प्रस्तुत विनिर्दिष्ट पालन का वाद पोषणीय नहीं है। उपरोक्त मामले में यह इस प्रकार नोट किया गयाः

> ''60. हमने सविंदा का विस्तार से अध्ययन किया है। अनुबंध की शर्तें स्पष्ट रूप से 30.10.2000 से 29.10.2003 तक 3 वर्षों तक सीमित थीं, जब तक कि इसे आपसी समझौते से नहीं बढ़ाया गया, और सविंदा के तहत सभी दायित्वों और सेवाओं को पूरा किया जाना था।
>
> 61. खंड 31 (ख) को भी केवल उसी अवधि के दौरान लागू होना था जैसा कि खंड 31 (क) के तहत पहली वार्ता दिनांक 29.7.2003 से 29.10.2003 की अवधि तक लागू होना था। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने ईमानदारी से अनुपालन किया है। जब तक खंड 31(ख) को समझौते की अवधि के दौरान अर्थात 29.07.2003 से 29.10.2003 की अवधि तक पढ़ा जाता है, तो यह वैध और लागू करने योग्य हो सकता है। हालाँकि, जिस क्षण इस समझौते को अवधि की समाप्ति के बाद लागू करने की मांग की जाती है, यह प्रथम दृष्टया शून्य हो जाता है, जैसा कि खण्ड पीठ ने अभिनिर्धारित किया है।''

13. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि संपत्ति स्थानीय प्राधिकारी की होने के कारण किराया नियंत्रण अधिनियम लागू नहीं होता है।

14. उच्च न्यायालय ने राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1956 (संक्षेप में 'नगरपालिका अधिनियम') के अंतर्गत बनाये गये नियमों को ध्यान में नहीं रखते हुए समझौते को एक पट्टा माना है जबकि नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना कोई भी पट्टा नहीं बनाया जा सकता है।

15. विवाद को दूसरे नजरिए से भी देखा जा सकता है। 11 महीने की अवधि तक सविंदा के तहत तय किये गये किराए में संशोधन का कोई प्रयास नहीं किया गया। अवधि समाप्त होने पर नया समझौता करना होगा। यह सहमत शर्तों पर होना चाहिए। ऐसे में मामले को देखते हुए एकतरफा किराया वृद्धि का प्रश्न ही नहीं उठता।

16. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि मूल समझौते के खंड 8 में भी परिषद् को शर्तों के संबंध में समय-समय पर ऐसे आदेश जारी करने की अनुमति दी गई थी। यदि प्रथम अपीलीय न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किये गये विचार को स्वीकार कर लिया जाये तो शर्तों के संबंध में समय-समय पर आदेश जारी करने की शक्ति निरर्थक हो जाती है। एक बार बढ़ोतरी की शक्ति के बारे में कोई विवाद नहीं है, तो किराए को एक बार 10 प्रतिशत बढ़ाने और उसके बाद दोनों पक्षों की सहमति पर इसे बढ़ाने का प्रश्न स्पष्ट रूप से बिना किसी आधार के है।

17. इन परिस्थितियों में यह माना जाएगा कि समझौता 11 महीने की अवधि के लिए था। जारी रखने के लिए एक नया समझौता करना आवश्यक था। यदि पक्षकारों के बीच कोई समझौता नहीं हुआ, तो एकतरफा कब्जे का सवाल ही नहीं उठता। चूंकि वृद्धि की शक्ति को खंड 8 के आधार पर माना गया है, इसलिए इसे एक बार के अभ्यास तक सीमित करने का प्रश्न स्पष्ट रूप से बिना किसी आधार के है क्योंकि खंड स्वयं ''समय-समय पर'' आदेश जारी करने की अनुमति देता है। इसके अतिरिक्त, धारा 38 के दायरे की पृष्ठभूमि में विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के अनुसार, प्रथम अपीलीय न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को राहत देना उचित नहीं था। सामान्य स्थिति में हम किराए का निर्धारण अधिकारियों पर छोड़ देते। कानून के प्रश्न पर निर्णय लेने में लगने वाले लंबे समय को ध्यान में रखते हुए, हमें लगता है कि यदि किराया 01.01.2007 से 1,000/- रुपये और पिछले तीन वर्षों के लिए 700/- रुपये बढ़ा दिया

जाए तो न्यायहित में परिपूर्णता होगी। उपरोक्त शर्तों पर दोनों पक्षों के मध्य विधिवत एक समझौता दर्ज किया जाएगा।

18. अपीलों का तद्नुसार निस्तारण किया जाता है, बिना किसी खर्चे के आदेश के।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी इन्द्र सिंह मीणा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।